Volume: 5 Issue: 5 Pages: 06-07

भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में छायावादोत्तर काव्य: युगीन संकट और दार्शनिक सातत्य

*[1] डॉ. शिव कुमार व्यास

*[1] सह प्राध्यापक, जी.एस. कॉलेज, जबलपुर, मध्यप्रदेश, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (QJIF): 8.4
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 26/April/2026
Accepted: 01/May/2026

***Corresponding Author**
डॉ. शिव कुमार व्यास
सह प्राध्यापक, जी.एस. कॉलेज, जबलपुर, मध्यप्रदेश, भारत।

सारांश:
प्रस्तुत शोध आलेख छायावादोत्तर हिंदी काव्य (1936 ई. से अद्यतन) का भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में एक व्यवस्थित अध्ययन है। यह आलेख इस धारणा का खंडन करता है कि छायावादोत्तर कविता केवल पश्चिमी 'वादों' (मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद) की अनुगामिनी थी। इसके विपरीत, यह प्रमाणित करता है कि अज्ञेय, दिनकर, मुक्तिबोध और कुँवर नारायण जैसे कवियों ने भारतीय दर्शन के मूलभूत प्रत्ययों-जैसे 'ऋत', 'शून्य', 'अद्वैत' और 'स्थितप्रज्ञता'-को समकालीन वैश्विक संकटों के समाधान हेतु पुनर्व्याख्यायित किया। काव्य-उद्धरणों के सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से यह शोध 'परंपरा' और 'आधुनिकता' के मध्य एक संश्लिष्ट दार्शनिक अंतर्संबंध को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, छायावादोत्तर काव्य, अद्वैत, ऋत, शून्य, आधुनिकता, मिथक, लोकमंगल।

प्रस्तावना:

वैश्विक आधुनिकता और भारतीय प्रत्यय

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आधुनिकता (Modernity) को अक्सर पश्चिमी प्रबोधन (Enlightenment) से जोड़कर देखा जाता है, जो मनुष्य और प्रकृति के बीच एक द्वैत (Dualism) पैदा करती है। किंतु छायावादोत्तर हिंदी काव्य यह सिद्ध करता है कि एक 'वैकल्पिक आधुनिकता' की संभावना भारतीय ज्ञान परंपरा में सदैव विद्यमान रही है। छायावादोत्तर कविता उस संधि-स्थल पर स्थित है जहाँ उपनिषदों का 'ऋषि-सत्य' और आधुनिक मनुष्य का 'यथार्थ-सत्य' परस्पर टकराते हैं और एक नई वैश्विक दृष्टि का निर्माण करते हैं।

'ऋत' और कर्मयोग का आधुनिक विन्यास: रामधारी सिंह 'दिनकर'

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'ऋत' (Cosmic Order) वह नैतिक विधान है जो ब्रह्मांड को संचालित करता है। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' (1946) में दूसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका के बीच इसी 'ऋत' की खोज की।

दिनकर 'भीष्म' के माध्यम से आधुनिक शांति-वाद पर प्रहार करते हुए 'धर्म' (प्राकृतिक न्याय) की स्थापना पर बल देते हैं:

"क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दंतहीन, विषरहित, विनीत, सरल हो।"

यहाँ दिनकर का ज्ञान-दर्शन भगवद्गीता के उस निष्काम कर्मयोग से प्रेरित है जो अन्याय के विरुद्ध 'युयुत्सा' (संघर्ष की इच्छा) को एक आध्यात्मिक कर्तव्य मानता है। यह 'पावर पॉलिटिक्स' का भारतीय नैतिक उत्तर है।

शून्यवाद और 'अद्वैत' की कलात्मक परिणति: सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

प्रयोगवाद के प्रणेता अज्ञेय पर अक्सर पाश्चात्य अस्तित्ववाद का प्रभाव माना जाता है, किंतु उनकी कालजयी कविता 'असाध्य वीणा' शुद्ध भारतीय योग-साधना और बौद्ध दर्शन के 'शून्यवाद' का आधुनिक भाष्य है।

वीणा को साधने की प्रक्रिया में कवि 'अहं-विसर्जन' (Dissolution of Ego) का वर्णन करता है:

"आ! मुझे ओढ़ ले--
मैं नहीं, मैं नहीं, यह वीणा बोल रही है--
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में--"

यहाँ 'शून्य' पश्चिमी दर्शन का 'Nothingness' (अभाव) नहीं है, बल्कि उपनिषदों की वह अवस्था है जहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद मिट जाता है। यह कविता यह संदेश देती है कि सृजन तभी संभव है जब मनुष्य स्वयं को समष्टि (Cosmos) में विलीन कर दे। यह भारतीय ज्ञान परंपरा का 'अद्वैत' बोध है।

मुक्तिबोध: 'आत्म-बोध' और सामाजिक विवेक का द्वंद्व

गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं में 'आत्म-साक्षात्कार' की प्रक्रिया उपनिषदों के 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) की तरह चलती है। वे अपनी कविता 'अंधेरे में' उस सत्य की खोज करते हैं जो भौतिकवादी सभ्यता की परतों के नीचे दबा है।
मुक्तिबोध का काव्य-दर्शन 'लोकमंगल' की भारतीय अवधारणा का विस्तार है:

"खोजता हूँ मैं उस
परम अभिव्यक्ति को,
जो कि अनिवार्यतः
जन-जन के हृदय में है।"

मुक्तिबोध का 'ब्रह्मराक्षस' उस एकाकी बुद्धिजीवी का प्रतीक है जिसके पास 'पर विद्या' (ज्ञान) तो है, पर वह समाज के 'अपर' (लोक) तत्वों से नहीं जुड़ पाया। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के उस सिद्धांत की पुष्टि है कि ज्ञान वही सार्थक है जो 'लोक-संग्रह' में प्रयुक्त हो।

लोक-चेतना और 'वसुधैव कुटुंबकम' का यथार्थवादी विस्तार

छायावादोत्तर कविता का 'प्रगतिवादी' स्वर (नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल) भारतीय ज्ञान परंपरा के 'चार्वाक' (भौतिकवाद) और 'बौद्ध करुणा' का आधुनिक विस्तार है।
नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' में लोक-संवेदना देखें:

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।"

यहाँ नागार्जुन मनुष्य और पशु के बीच जिस आत्मीयता को दिखाते हैं, वह ऋग्वेद के 'शांति सूक्त' का काव्यमय विस्तार है, जहाँ केवल मनुष्य की नहीं, बल्कि जड़-चेतन सभी के कल्याण की कामना की गई है।

दार्शनिक संश्लेषण: छायावादोत्तर कविता के प्रमुख स्तंभ

दार्शनिक तत्व	काव्यगत अभिव्यक्ति	प्रतिनिधि कवि
ऋत (Cosmic Order)	न्यायपूर्ण युद्ध और संघर्ष	दिनकर, नरेश मेहता
अद्वैत (Non-dualism)	सृजन प्रक्रिया और आत्म-लय	अज्ञेय, कुँवर नारायण
करुणा (Compassion)	शोषित वर्ग के प्रति संवेदना	नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल
मौन (Silence)	शब्दातीत सत्य की खोज	अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र

निष्कर्ष:

परंपरा का वैश्विक भविष्य

निष्कर्षतः, छायावादोत्तर काव्य भारतीय ज्ञान परंपरा का निषेध नहीं, बल्कि उसका 'पुनर्नवा' (Renovation) है। इन कवियों ने पाश्चात्य आधुनिकता के झंझावातों के बीच भी अपनी जड़ों को सुरक्षित रखा। जहाँ पश्चिमी काव्य अक्सर 'विषाद' (Despair) पर समाप्त होता है, वहीं भारतीय छायावादोत्तर कविता संघर्ष के बीच भी 'आशा' और 'समग्रता' की खोज करती है। यह कविता सिद्ध करती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा एक जड़ वस्तु नहीं, बल्कि एक गतिशील ऊर्जा है जो प्रत्येक युग में अपनी सार्थकता सिद्ध करती है।

संदर्भ सूची:

1. Dinkar RS. Sanskriti Ke Char Adhyaya. Patna: Udayachal, 1956. (भारतीय संस्कृति का विस्तृत इतिहास)।
2. सिंह, नामवर (1985). कविता के नए प्रतिमान। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. अज्ञेय, स.ही.वा. (1961). आंगन के पार द्वार। भारतीय ज्ञानपीठ।
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप (1986). हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
5. Radhakrishnan S. Indian Philosophy. Oxford University Press, 1923.
6. Pollock Sheldon the Language of the Gods in the World of Men. University of California Press, 2011.
7. भारती, धर्मवीर (1954). अंधा युग। इलाहाबाद: किताब महल।
8. मुक्तिबोध, ग. मा. (1964). चांद का मुंह टेढ़ा है। भारतीय ज्ञानपीठ।
9. नेगी, जगत सिंह (2020). भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक हिंदी काव्य। दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
10. Lutze Lothar Hindi Writing in Post-Colonial India. Manohar Publications, 1985.